Introduction

:: प्राक् कथन ::

साहित्य की सभी विधाओं में कविता के बाद कहानी मेरी सर्वाधिक प्रिय विधा रही है । मानव-इतिहास में कहानी उतनी ही पुरानी है, जितना कि मानव । शैशव-काल में "लोरी" के बाद शिशु का परिचय कहानी से ही होता है । मैंने आजतक ऐसा कोई बच्चा नहीं देखा जिसे कहानी अच्छी न लगती हो । कहानी में छिपा "बतरस" मनुष्य को हमेशा आकर्षित करता रहा है । कहानी में हमेशा ~~कुतुहल~~ एक कुतुहल और जिज्ञासा का भाव संलग्नित रहता है । " आगे क्या हुआ ? " यह कहानी का ध्रुव-भाव होता है । पुनरावर्तन कहानी में नहीं चल सकता । वहां तो आगे की बात जानने की एक उत्सुकता सदैव बनी रहती है । कविता में "दुबारा" होता है, कहानी में नहीं ।

हमारे यहां कहानी प्राचीन काल से मिलती है । "पंचतंत्र" , "हितोपदेश " , " कथा सरित सागर " , " बौद्ध एवं जैन जातक कथाएं " , "वैताल पचीसी " , " बत्तीस पुतलियों की वार्ता " , " राजा भोज और विक्रमादित्य की कहानियां " ; ये सब कहानियां प्राचीन काल से बराबर मिल रही हैं । कविकुलगुरु कालिदास के "मेघदूत" काव्य में "कथा-कोविद" वृद्ध-जनों का उल्लेख मिलता है, जो उदयन आदि राजाओं की कथा कहने में अत्यन्त निपुण हैं । मध्यकाल में "अकबर-बिरबल की कहानियां " , " सिद्धराज जयसिंह , मूलराज सोलंकी , वनराज चावड़ा , जयशिखरी , रा नवघण , रा खेंगार, राणकदेवी , जसमा ओडण , लाखा वणजारा आदि की कहानियां ; इधर मियां फुसकी की कहानियां , ईसप की कहानियां , अरेबियन नाईट्स की कहानियां , अलिफ लैला , शीरीं फरहाद , सोहिणी मेहवाल , सदेवंत सावळिंगा आदि की प्रेम कहानियां , ~~गुजरा~~ गुजरात में "बच्चों की मां" के नाम से विख्यात गिजुभाई बधेका की कहानियां

प्राप्त होती हैं ; बावन वैष्णवन की वार्ता , या चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर आधारित संतों की कहानियां , राणा प्रताप , छत्रपति शिवाजी आदि वीर-पुरुषों की कहानियां भी प्राप्त होती हैं । इधर राजपाल एण्ड सन्स से अलग-अलग देशों की तथा भारत के अलग-अलग प्रदेशों की लोककथाओं की एक श्रृंखला प्रकाशित हुई है ।

किन्तु इधर जब हम साहित्य के संदर्भ में कहानी की बात करते हैं , तो एक तथ्य ध्यानार्ह रहना चाहिए कि वस्तु एवं शिल्प उभय दृष्टि से ये कहानियां नि निहायत भिन्न प्रकार की साबित होती हैं । प्राचीन कहानियां राजा-रानियों की , देवताओं की , परियों और फरिश्तों की , भूत-प्रेत और डाकिनों की होती थीं । अभिप्राय यह कि उनमें कल्पना का तत्व सर्वोपरि रहता था ।, जब कि हमारी आधुनिक साहित्यिक कहानियां मानव-जीवन के सरोकारों से वास्ता रखने के सबब निष्ठुर-निर्मम-क्रूर वास्तविकता पर आधारित होती है । पुरानी कहानियों में "स्टोरी-मोटिफ " होते थे , आज की कहानियों में जीवन के सूत्र होते हैं । प्राचीन कहानियों में चमत्कार के तत्व प्रभूत मात्रा में पाये जाते थे , हमारी ये कहानियां वैज्ञानिक सोच को सामने लाती हैं । प्राचीन कहानियों में कई बार वातावरण या परिवेश का तत्व एक सिरे से नदारद होता है । कहीं तो नगर या राजाओं तक के नाम नहीं होते , और कहीं पशु-पक्षियों और जीव-जंतुओं तक के नाम होते हैं ; यथा — हीरामन नामक तोता , चित्रग्रीव नामक कबूतर , आदि आदि । दूसरी ओर आधुनिक कहानियों में वातावरण या परिवेश के तत्व का विशेष महत्व होता है । आंचलिक कहानियों में तो वातावरण ही उनका प्राण-तत्व होता है ।

वस्तुतः जिसे हम"कहानी"कहते हैं , वह अंग्रेजी की "शोर्ट-स्टोरी" से प्रभावित है । अमरीकी कहानीकार , जो वहां उसके जनक भी

माने जाते हैं, एडगर एलन पो ने कहानी को इस प्रकार परिभाषित किया है : " ए शोर्ट स्टोरी इज़ शोर्ट इनफ़ टु बी रेड इन ए सिंगल सिटिंग, इज़ रिटन टु मेक एन इम्प्रेशन आन द रीडर, एक्सक्लुडिंग आल धेट इज़ नोट फोरवर्ड धेट इम्प्रेशन, कम्प्लीट एण्ड फाइनल इन इट्सेल्फ." अर्थात् कहानी इतनी छोटी होती है कि उसे एक बैठक में पढ़ा जा सकता है। वह पाठक पर कोई एक प्रभाव (ध्यान रहे कोई एक इम्प्रेशन) पैदा करने के लिए लिखी जाती है। उसमें से उन तमाम चीज़ों को निष्कासित किया जाता है, जो उस प्रभाव को पैदा करने में बाधक सिद्ध हो सकती हैं। वह अपने आप में सम्पूर्ण होती है। यह अंतिम बात उपन्यास को लक्षित करके कही गई है। उपन्यास में अनेक घटनाएं होती हैं, जो परस्पर अनुस्यूत होती हैं और कार्य-कारण श्रृंखला का निर्माण करती हैं। यदि किसी गद्य की पाठ्य-पुस्तक में उपन्यास का कोई अंश दिया जाता है, तो उसके पूर्व टिप्पणी के रूप में उसका पूर्वापर संबंध दिया जाता है। यह बात कहानी पर लागु नहीं होती। नयी कहानी, साठोत्तरी कहानी और अब समकालीन कहानी में कई बार ऐसा महसूस होता है कि कहानी कहीं बीच में ही अंतर्लीन हो गई है, परन्तु ऐसी कहानियां अपने इस प्रकार के अन्त के कारण कई प्रश्नों को उकेरती है। प्रारंभ, मध्य और अन्त वाला कहानी का वह ढांचा भी अब समाप्त हो गया है। भले प्राध्यापकीय विवेचना में कहानी के तत्त्वों की चर्चा होती रहे, किन्तु आज की कहानी इसे भी काफ़ी पीछे छोड़ आई है। अब ऐसी कहानियां भी प्राप्त होती हैं जिनमें किसी एक तत्त्व का प्राधान्य होता है, अब कहानी-सम्बन्धी वह मान्यता भी पीछे छूट गयी है कि कहानी में प्रारंभ और अन्त का सविशेष महत्त्व होता है : यथा — " ए स्टोरी इज़ लाईक ए होर्स, व्हेर द स्टार्ट एण्ड एण्ड काउण्ट मोस्ट."

संक्षेप में कहानी के मानवीय सरोकारों से प्रेरित होकर उसके पठन-पाठन में मेरी विशेष रुचि रही है । यद्यपि एम.ए. द्वितीय खण्ड में मेरा विशेष पत्र उपन्यास का था । उसका कारण कुछ दूसरा था । उपन्यास देसाई साहब पढ़ाते थे और मैं उनके ज्ञान से वंचित नहीं रहना चाहती थी । सन् 1997 में मैंने एम.एस. विश्वविद्यालय से एम.ए. किया । उसके बाद पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोध-कार्य करने की ईच्छा थी और उसके लिए मैंने देसाई साहब से बात भी की , लेकिन उनके अन्तर्गत जगह नहीं थी । विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार वे आठ से अधिक अनुसंधित्सुओं को नहीं रख सकते थे और प्रतीक्षारत छात्र-छात्राओं की पंक्ति भी काफी लम्बी थी , अतः उनकी सूचना के अनुसार ही मैंने अपना पंजीकरण डा. एच.एम. पाण्डेय के निर्देशन में सन् 1998 में करवाया ।

पी-एच.डी. शोध-कार्य हेतु क्षेत्र-चयन तो मैं पहले ही कर चुकी थी , केवल विषयांग (टापिक) का निर्धारण शेष था । मेरे पिता जय-प्रकाश प्रेम बरसों दलित आंदोलन और मान्यवर कांशीरामजी से जुड़े रहे हैं , अतः डा. बाबा साहब आंबेडकर और ज्योतिबा फुले जैसे क्रान्तद्रष्टा मनीषियों के साहित्य-संस्कारों-विचारों से मैं आप्लावित रही हूं । अतः देसाई साहब तथा पांडेय साहब से पर्याप्त विचार-विमर्श के उपरान्त मैंने पी-एच.डी. के लिए विषयांग रखा -- " हिन्दी कहानी : दलित विमर्श " । और उसीको लेकर दिनांक 24-4-1998 को मेरा नामांकन (रजिस्ट्रेशन) हो गया ।

नामांकन के पूर्व और उसके बाद एक लम्बे अरसे तक आदरणीय देसाई साहब तथा पांडेय साहब के साथ शोध-प्रविधि के संदर्भ में कई बैठकें हुई , जिनमें शोध-प्रक्रिया विषयक बहुत-से मुद्दों की बड़ी सूक्ष्म

व गहरी चर्चा हुई । उपजीव्य- ग्रन्थ , सामग्री-चयन, पाद-टिप्पणी , शोध-संबंधी पारिभाषिक शब्दावली , शोध-भाषा , सहायक ग्रन्थ सूची §बिब्लिओग्राफी § के निर्माण-प्रक्रिया , निष्कर्षायण की प्रक्रिया जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों की चर्चा कतिपय शोध-ग्रन्थों तथा शोध-प्रबंधों को सामने रखकर प्रत्यक्षतः करवायी गयी । शोध-प्रबंध तथा शोध-प्रबंध के गठन के संदर्भ में प्रोफेसर राजूरकर , डा. नगेन्द्र , डा. रवीन्द्र श्रीवास्तव , डा. नवीनचन्द्र , डा. के.का. शास्त्री प्रभृति विद्वानों के एतद्विषयक ग्रन्थों के अवलोकन का सूचन भी किया गया जिसका मैंने प्रामाणिकता से पालन किया । सामग्री-चयन के उपरान्त शोधार्थ को केन्द्र में रखते हुए अध्ययन , अनुशीलन , अन्वेषण और विश्लेषण-विवेचन की प्रक्रिया शुरू हुई । इस प्रकार गालिबन पांच-छः वर्षों के परिश्रम के उपरान्त इस मकाम पर पहुंचना संभव हुआ है । इस बीच में कुछ सxxx सामाजिक - पारिवारिक - राजनीतिक व्यवधान भी आते गये , परन्तु इन सबसे मार्ग निकालते हुए अन्ततः xx यह कार्य संपन्न कर सकी हूं । विषय-वस्तु के सुचारू संपादन हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध को मैंने निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त किया है --

§1§ प्रथम अध्याय : विषय-प्रवेश ।

§2§ द्वितीय अध्याय : दलित विमर्श के विभिन्न आयाम ।

§3§ तृतीय अध्याय : साहित्य में दलित-विमर्श का चित्रण ।

§4§ चतुर्थ अध्याय : प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द-स्कूल के कहानीकारों की कहानियों में दलित-विमर्श ।

§5§ पंचम अध्याय : शैलेश मटियानी की कहानियों में दलित-चिंतन ।

§6§ छठ अध्याय : स्वातंत्र्योत्तर दलित तथा दलितेतर कहानीकारों की कहानियों में दलित-विमर्श ।

§7§ सप्तम् अध्याय : उपसंहार ।

प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश" का है जिसमें हमारा उपक्रम शोध-विषय की ओर उन्मुख रहने का है । " प्रास्ताविक" में बहुत संक्षेप में कहानी विधा पर प्रकाश डालने के उपरान्त पुराने कथा-साहित्य से आधुनिक कहानी को अलगाते हुए उसके कुछ व्यावर्तक अभिलक्षणों को रेखांकित किया गया है । इसका किंचित् उल्लेख हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके है । यहां बहुत संक्षेप में कहानी के स्वरूप पर सैद्धान्तिक विवेचन भी प्रस्तुत हुआ है । कहानी और उपन्यास उभय की गणना कथा-साहित्य के अन्तर्गत होती रही है, अतः यहां उभय के वस्तु-शिल्प विषयक अन्तर को स्पष्ट करने का एक नम्र प्रयास भी किया गया है । उपन्यास और कहानी में बड़े-छोटे का, केवल आकार और फलक विषयक अन्तर ही नहीं है, शिल्प-विषयक अन्तर भी है ; जिसे यहां रेखांकित करने का उपक्रम रहा है । विशेषतः लघु उपन्यास और बड़ी कहानी के संदर्भ में यह मुद्दा विचारणीय हो उठता है । इसके उपरान्त हिन्दी कहानी के सम्पूर्ण विकास-क्रम को उपस्थापित किया गया है । हिन्दी की प्रथम कहानी से लेकर विश्वम्भरनाथ शर्मा " कौशिक ", जयशंकर प्रसाद, चण्डीप्रसाद हृदयेश, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा प्रभृति कहानीकारों के कर्तृत्व को उजागर करते हुए, तथा उनके योगदान को स्पष्ट करते हुए, नयी कहानी, साठोत्तरी कहानी, समकालीन कहानी के विभिन्न आयामों और विकासों को चिह्नित करने का प्रयास भी यहां हुआ है । इसी अध्याय के अन्तर्गत कहानी और यथार्थ के संबंध को भी चर्चा का मुद्दा बनाया गया है, क्योंकि हमारा आलोच्य विषय प्रमुखतया यथार्थधर्मिता पर ही आधृत है । इसी यथार्थधर्मिता

से दलित-विमर्श को भी जोड़ा गया है । इसी संदर्भ में धर्म और शास्त्रों द्वारा दलितों पर थोपी गयीं निर्योग्यताओं (डिसएबिलिटिज़) का विस्तृत विवेचन भी हुआ है । इन निर्योग्यताओं का स्वरूप कई प्रकार का रहा है, यथा धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि-आदि । अध्याय के अन्त में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा अध्याय के अन्तर्गत चर्चित मुद्दों को केन्द्रस्थ रखते हुए कतिपय निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है ।

दूसरे अध्याय में दलित-विमर्श के नाना आयामों को उकेरा गया है । इस अध्याय में दलित-विमर्श और बौद्ध मत, बौद्ध-मत पर पुराणों द्वारा आक्रमण, जैनों और बौद्धों पर शैवों के प्रहार, इस्लाम का आगमन, भारत में बौद्ध धर्म का लोप, दलित-विमर्श, स्वतंत्रता-पूर्व दलित जागरण ; उसमें गोपालराव हरिदेशमुख (, गोपाल गणेश आगरकर, महर्षि अन्नासाहब कर्वे, श्रीमन्त महाराजा सयाजीराव गायकवाड़, गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गांधी, महर्षि विट्ठलरामजी शिन्दे, सावरकर, राजर्षि श्री शाहूजी महाराज, कर्मवीर भाऊराव पाटिल, डा. बाबासाहब आंबेडकर प्रभृति महानुभावों की भूमिका या योगदान ; स्वातंत्र्योत्तर काल में दलितोद्धार और दलित जागरण के प्रयत्न ; दलित-विमर्श और साहित्य, मराठी साहित्य में दलित-विमर्श का ~~चित्रण~~xxx चित्रण जैसे मुद्दों की पड़ताल की गई है । अध्याय के अन्त में समग्रावलोकन की प्रक्रिया के द्वारा कतिपय निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है ।

"हिन्दी साहित्य में दलित-विमर्श का चित्रण " यह मेरे तीसरे अध्याय का शीर्षक है । इसमें आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य का हवाला देते हुए उनमें निरूपित दलित-विमर्श के मुद्दों की पड़ताल करने का एक उपक्रम है । आदिकाल के अन्तर्गत सिद्ध कवियों में सरहपा, नाथ कवियों में गोरखनाथ, चर्पटीनाथ, भक्तिकाल के कवियों में

कबीर, नामदेव, रैदास, धर्मदास, गुरु नानक, दादू दयाल, सुंदरदास, मलूकदास, निश्चलदास, जगजीवनदास, पल्टूदास, गरीबदास, बुल्लासाहब, दयाबाई, सहजोबाई आदि निर्गुण शाखा के कवि; सगुण भक्ति के अंतर्गत रामभक्ति शाखा के नाभादास, कृष्ण-भक्ति शाखा के कृष्णदास और सूरदास आदि कवियों के दलित-विमर्श को लेकर उनके न्यूनाधिक योगदान को स्पष्ट करने का एक प्रयास हुआ है। यहाँ एक बात स्पष्ट करना चाहेंगे कि निर्गुण शाखा के कवियों में जहाँ एतद्विषयक प्रखरता मिलती है, वहाँ सगुण शाखा के कवियों में कुछ मध्यमार्ग के संकेत मिलते हैं। निर्गुण शाखा में दो-एक अपवाद को छोड़कर अधिकांश कवि निम्न जातियों से आये हैं। यहाँ इस तथ्य को भी गौरतलब रखा गया है कि क्या कारण है कि निम्न जाति के इन भक्त कवियों में एक सिरे से मूर्तिपूजा और शास्त्र-विधा का विरोध मिलता है। इसी अध्याय के अन्तर्गत आधुनिक काव्यधारा के कुछेक उदाहरणों को उद्धृत करते हुए दलित-विमर्श के मुद्दे की पड़ताल की गई है। यहाँ मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रामकुमार वर्मा, डा. रामधारी सिंह दिनकर, जगदीश गुप्त, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, श्योराजसिंह बेचैन, कुसुम योगी, हेमलता महीश्वर, अशोक चक्रधर, जयप्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय प्रभृति कवियों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। काव्यधारा के उपरान्त प्रस्तुत अध्याय में दलित-विमर्श के संदर्भ में उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध इत्यादि विधाओं को खंगाला गया है। अध्याय के अन्त में अध्याय के विहंगावलोकन के उपरान्त कुछेक निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है।

यह तो एक सुविदित तथ्य है कि नारी-विमर्श तथा दलित-विमर्श ये दो मुद्दे आधुनिक काल में सविशेष चर्चित रहे हैं। इनमें नारी-विमर्श विषयक कथा-साहित्य का प्रारंभ तो पूर्व

— प्रेमचन्दकाल से ही हो गया था । हल्का या नर्म ही सही किन्तु हिन्दी के प्रथम उपन्यास में के रूप में जिसका नामोल्लेख हो रहा है, वह पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत "भाग्यवती" उपन्यास नारी-विमर्श को सामने लाता है । हिन्दी साहित्य में दलित-विमर्श का प्रवेश, कुछ बाद में, प्रेमचन्द युग में हुआ है । चतुर्थ अध्याय में प्रेमचन्द-स्कूल के कहानी कारों की कहानियों में दलित-विमर्श की बात चलायी है । प्रेमचन्द-स्कूल के कहानीकारों में पांडेय बेचैन शर्मा "उग्र" (कहानी - समाज के चरण), सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (चतुरी चमार), आचार्य चतुरसेन शास्त्री (बेटी का भात), महापंडित राहुल सांकृत्यायन (पुजारी), उपेन्द्रनाथ अश्क (पिंजरा), ऋषभचरण जैन (कौड़ियों का हार) आदि कहानीकारों की कहानियों में वर्णित दलित-विमर्श को उकेरने का प्रयास किया है । यहां हमने केवल एक-एक कहानी का जिक्र किया है, वस्तुतः अध्याय में हमने इन रचनाकारों की एकाधिक कहानियों को लिया है । इसके उपरान्त प्रेमचन्दजी की करीबन बाईस जितनी कहानियों को दलित व विमर्श के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित ~~किया है~~ किया है, जिनमें "ठाकुर का कुआं", "सद्गति", "सवासेर गेहूं", "कफ़न", "सती", मेरी पहली रचना", "दूध का दाम", "मंदिर", "मंत्र", "पूस की रात", "सौभाग्य के कोड़े", "घासवाली" इत्यादि कहानियों को उल्लेखनीय कहा जा सकता है । प्रेमचन्द एक वस्तुवादी और सामाजिक-राजनीतिक चेतना से युक्त जागरूक-प्रहरी साहित्यकार हैं, अतः उनकी कहानियों में हमें दलित-विमर्श के कई मुद्दे उपलब्ध होते हैं । उनके अपने समय में दलित-चेतना को सर्वाधिक रूप से अग्रसरित करने में प्रेमचन्द कहीं पीछे नहीं रहे हैं । यहां कुछ लोग "सहानुभूति" और "स्वानुभूति" के मुद्दे को उठाते हुए प्रेमचन्द के दलित-विमर्श पर कतिपय सवाल उठा सकते हैं, और लोग उठा भी रहे हैं, किन्तु उनके साहित्यकार की निष्ठा, अपराजेय आस्था तथा उनकी मंशा को लेकर कोई सवाल नहीं उठा सकता ।

प्रेमचन्द के उपरान्त इस संदर्भ में हमने शैलेश मटियानी को लिया है जिनकी कहानियों में दलित-विमर्श प्रभूत मात्रा में पाया जाता है । मटियानीजी की भी बीस-बाईस कहानियों को विमर्श का मुद्दा बनाया गया है । इन कहानियों में "सतजुगिया आदमी" , "घुघुतिया त्योहार " , "नंगा " , "लीक" , चिथड़े " , "पत्थर" , "चील" , "प्यास " , "मिट्टी " , "दो दुःखों का एक सुख " , "गोपुली गफूरन" , "×प्रेतमुक्तिx " प्रेतमुक्ति " , "महाभोज" प्रभृति प्रभृति कहानियाँ मुख्य हैं । मटियानीजी की कहानियों में कहीं-कहीं गरीबी का भीषण वर्णन उपलब्ध होता है । उन्होंने फुटपाथिये , जेबकतरे , हत्यारे , चाकूबाज , भिखारियों और कोढ़ियों तक को अपनी कहानियों में स्थान दिया है । इस संदर्भ में उर्दू के चर्चित कथाकार सआदत हसन मण्टो , गोर्की , चेखव जैकलंदन प्रभृति कथा-स्वामियों के साथ इनका नाम इधर लिया जा रहा है । राजेन्द्र यादव ने तो यहाँ तक कह दिया था कि मटियानीजी की दश-बारह कहानियों के एवज में वे अपना समग्र साहित्य न्योछावर कर सकते हैं । यद्यपि उनकी दृष्टि प्रेमचन्दजी की भाँति निर्भ्रान्त नहीं है और कहीं-कहीं चिंतनगत अंतर्विरोध उनमें मिलता है । जो भी हो , उनका रचनाकार निर्भ्रान्त है और मानवीय संवेदना के संदर्भ में उनको प्रेमचन्द से ऊपर नहीं तो समकक्ष तो रखा ही जा सकता है । प्रस्तुत अध्याय में हमने दलित-विमर्श के संदर्भ में उनके कृतत्त्व का , कहानियों का मूल्यांकन किया है । अध्याय के अन्त में यहाँ भी निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं ।

छठे अध्याय में हमने दलित तथा दलितेतर हिन्दी कहानीकारों को लिया है और उसमें लगभग तीस-बत्तीस

कहानियों को आधार बनाया गया है । इन कहानियों में "अम्मा" (ओमप्रकाश वाल्मीकि), "बुद्ध सरना कहानी लिखता है" (डा. कुसुम वियोगी), " आगे बढ़ो " (डा. योगेन्द्र मेश्राम), "सोनेरी टोली की करामातें" (जहांगीरखान), "गिद्ध " (पद्मश्री स्व. श्री. दया पवार), " मुरदे " (गोपाल रंडगांवकर), "गुजर-बसर " (योगिराज वाघमारे), " सांग " (जयप्रकाश कर्दम), "छूत कर दिया " (सूरजपाल चौहान), " परनाम नेताइनजी " (डा. रमणिका गुप्ता), "सुरंग " (डा. दयानंद बटोही), "लटकी हुई शर्त " (प्रह्लादचंद दास), " अपना गांव " (डा. मोहनदास नैमिशराय), " एक और अन्त " (अभयकुमार सिन्हा), "एक और सीता " (आलमखान शाह), "आदमी" (आशीष सिन्हा), "अस्वीकृति" (गिरिराजशरण अग्रवाल), "सड़क" (जगदीश दीक्षित), " आषाढ़ का एक दिन " (जवाहर सिंह), "कमीज़" (नरेन्द्र मौर्य), " कामरेड का सपना " (बलराम), "उठे हुए हाथ " (डा. मधुकर गंगाधर), "हरिजन सेवक " (मधुकरसिंह), " पन्ना धाय का दूसरा बेटा " (रघुनाथ प्यासा), "अयोध्याकांड " (रमेशचन्द्र शाह), "सर्पदंश " (डा. रामदरश मिश्र), " रम्मू की कहानी " (रामसुरेश), " खाली झोली मेरे हाथ " (शशिप्रभा शास्त्री), " बच्छूघास" (श्रीविलास डबराल) x तथा " छिपे हुए हाथ " (सच्चिदानंद धूमकेतु) आदि उल्लेखनीय हैं । उक्त कहानियों में निरूपित दलित-विमर्श को स्पष्ट करने का उपक्रम यहां रहा है ।

सातवां अध्याय "उपसंहार" का है, जिसमें प्रबंध की उपादेयता और उपलब्धियों को चिह्नित करते हुए, समूचे प्रबंध के सार-संक्षेप को और निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है । यहां बहुत संक्षेप में उसकी भविष्यत् संभावनाओं को उकेरने का एक नम्र प्रयास किया है ।

सन्दर्भानुक्रम को सूचित करने के दो तरीके हैं — एक तो प्रत्येक पृष्ठ के नीचे संदर्भ प्रस्तुत किए जाएं, दूसरे अध्याय के अन्त में समूचे अध्याय के एक साथ सभी संदर्भों को ×××× क्रमांकित किया जाए। हमने इस प्रबंध में दूसरी पद्धति का निर्वाह किया है।

प्रबंध के अन्त में चार परिशिष्टों में हमने "सन्दर्भिका" (बिब्लिओग्राफी) को प्रस्तुत ×××××× किया है, जिसमें उपजीव्य ग्रन्थ, सहायक-ग्रन्थ, हिन्दी तथा अंग्रेजी के, पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख किया है। "संदर्भिका" को यथासंभव व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक ढंग से अकारादि क्रम में से रखा गया है।

×××××××××× अध्ययन-अनुशीलन की इस समग्र प्रक्रिया में हमने अनुभव किया कि अपनी अभिरूचि हेतु पढ़ना एक बात है और शोध-अनुसंधान की दृष्टि से पढ़ना दूसरी बात है। हां, इतना अवश्य है कि यदि विषय अपनी रूचि का हो तो परिश्रम कुछ कम हो सकता है। उसमें एक निष्ठागत संतोष (जोब-सतिस्फेक्शन) की प्राप्ति होती है।

यहां सर्वप्रथम मैं उन महानुभावों और विद्वानों के प्रति श्रद्धावनत हूं जिनके ग्रन्थों या लेखों से मैं प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से लाभान्वित हुई हूं।

किसी भी व्यक्ति के जीवन में माता-पिता का जो स्थान एवं महत्व है वह अनन्यतम है। उनके उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकते। यहां अतीव श्रद्धा से उनके योगदान का मैं स्मरण करती हूं। मैंने पहले भी कहा है कि मेरे पिताश्री जयप्रकाश प्रेम मेरे लिए केवल पिता नहीं है, मेरे प्रेरणा-स्रोत भी है। दलित-विमर्श की समझ को विकसित करने में उनका बड़ा योगदान

रहा है । अतः उनका स्मरण तो प्रतिक्षण रहेगा । उनके अतिरिक्त मैं श्री एस. क्रिशना (आनंद) की विशेष आभारी हूं जिनके ग्रन्थ " भगवान बुद्ध : धम्मसार और धम्मचर्या " ने कई-कई रूपों में प्रेरित किया है ।

पिताजी के अतिरिक्त डा. बाबासाहब आंबेडकर, ज्योतिबा फुले, राजर्षि शाहूजी महाराज, माननीय कांशीराम xx जी आदि मेरे मानसगुरु हैं । उनके चरणों में भी मैं अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करती हूं । इन सबमें दादी मंगलादेवी बी. प्रेम का विस्मरण मैं कैसे कर सकती हूं ? उनके स्नेहाशीष सदैव मेरे साथ रहे हैं ।

हमारी परंपरा में गुरु का xxxx विशेष महत्व है । वह हमारे मानस का स्रष्टा है, हमारा पोषक है और आलस्य और प्रमाद जैसे महारिपुओं का संहारक भी है । अतः यहां मैं अपने निर्देशक-द्वय के प्रति श्रद्धावनत हूं । मेरे प्रथम निर्देशक डा. हरिप्रसाद पांडे तथा साम्प्रतिक निर्देशक उनकी श्रीमतीजी डा. शन्नो पांडे दोनों के मार्गदर्शन के अभाव में मेरा यह कार्य सुचारु रूप से संपन्न नहीं हो सकता था । डा. शन्नो पांडे की छात्र-वत्सलताxxx- कला-संकाय परिसर में xxx विश्रुत है । इधर उनका साथ-सहयोग मुझे विशेष रूप से मिला है । अतः उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूं । उनके ऋण से मुक्त होना असंभव है ।

मेरा पंजीकरण जब हुआ था तब विभागाध्यक्ष प्रोफेसर चारुकान्त देसाई साहब थे । उनका मार्गदर्शन तथा आशीर्वाद मुझे सदैव मिलते रहे हैं । उनके विशाल एवं संपन्न व्यक्तिगत पुस्तकालय से मैं अतीव लाभान्वित हुई हूं । पुस्तकों, ग्रन्थों, ज्ञानकोशों और पत्रिकाओं को डाक्टर साहब एक अध्यापक के औजार मानते हैं । उनका प्रतिश्रुत व्यक्तित्व तथा ज्ञान-निष्ठा मुझे सदैव प्रेरित

करते रहे हैं । उनके प्रति मैं श्रद्धावनत हूं ।

विभाग के अन्य अध्यापकों में वर्तमान विभागाध्यक्ष डा. विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी साहब का भी मैं तहेदिल से आभार मानती हूं । मेरे अनेक पत्रों को अग्रसरित करते हुए समय-समय पर उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया है, एतदर्थ उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं । इनके अतिरिक्त डा. शैलजा भारद्वाज, डा. वामन वि. अहिरे, डा. ओ.पी. यादव, डा. दक्षा मिस्त्री, डा. कल्पना गवली, डा. कनुभाई वि. निनामा, डा. एन.एस. परमार, डा. मनीषा ठक्कर प्रभृति के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं । डाक्टर साहब के कार्य-काल में जिन विद्वान आचार्यों के व्याख्यान हुए उनसे भी मैं लाभान्वित हुई हूं । उनमें प्रोफेसर शिवकुमार मिश्र, प्रो. नामवरसिंह, प्रो. चौथिराम यादव, प्रो. अम्बाशंकर नागर, प्रो. मदनगोपाल गुप्त, प्रो. कुंवरपाल सिंह, प्रो. सनतकुमार व्यास आदि उल्लेखनीय हैं । इन सबके प्रति मैं अपना श्रद्धा-भाव व्यक्त करती हूं ।

कुछ सामाजिक-पारिवारिक व्यवधानों से मेरा कार्य बीच-बीच में विलंबित होता गया था, अतः मुझे अपनी कार्यावधि बढ़वाने की आवश्यकता हुई । इस कार्य में मुझे कला-संकाय के वर्तमान प्राचार्य (डीन) प्रो. आर.जे. शाह साहब से खूब सहयोग तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है । म.स. विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति महोदय डा. मनोज सोनी साहब ने भी इस दिशा में मेरी सहायता की है । इन दोनों महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा परम कर्तव्य है ।

मैं अपनी सीमाओं से भलीभांति वाकिफ हूं, अतः क्षतियों और त्रुटियों के लिए प्रथमतः क्षमाप्रार्थी हूं । मेरे इस

कार्य से यदि भविष्य के अनुसंधित्सु यत्किंचित् भी लाभान्वित हुए तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगी । अन्त में कवि अज्ञेय के शब्दों में कहना चाहूंगी —

" लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते ।
बूंद स्वाति की भले हो
बेधती है मर्म सीपी का उसी निर्मम त्वरा से
वज्र जिससे फोड़ता चट्टान को
भले ही फिर व्यथा के तम में
बरस पर बरस बीतें
एक मुक्ता-रूप को पकते ।।। "

विनीत ,
कु. प्रेम स्वाति जयप्रकाश ,
शोध-छात्रा , हिन्दी विभाग ,
म. स. विश्वविद्यालय , ~~बड़ौदा~~ बड़ौदा ।

सोमवार ,
दिनांक: 24-4-06